आत्माराम शर्मा

२६ फरवरी १९६८ को ग्राम खरगापुर, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में जन्म. हिन्दी साहित्य में एम.ए. और एम.सी.ए. की उपाधि. नईदुनिया समाचार-पत्र में कला-समीक्षक के तौर पर लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताओं का प्रकाशन. 'गर्भनाल पत्रिका' के संस्थापक सदस्य एवं पूर्व-सम्पादक. सम्प्रति : जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश के सृजनात्मक उपक्रम 'मध्यप्रदेश माध्यम' में उप प्रबन्धक.

सम्पर्क : डीएक्सई-२३, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.). ईमेल : atmaram.sharma@gmail.com

बातचीत

हिन्दी-प्रेमी डॉ. गेनादी श्लोम्पेर से आत्माराम शर्मा की बातचीत

हिंदी ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बन सकती है

आत्माराम : अपने और इज़राइल में हिंदी अध्यापन के बारे में पाठकों को बताना चाहेंगे।

डॉ. गेनादी श्लोम्पेर : मेरा जन्म भूतपूर्व सोवियत संघ में हुआ था। मैंने १९७६ में ताश्कंद विश्वविद्यालय से हिंदी-उर्दू-पंजाबी के साहित्य में एम.ए. किया। ताश्कंद में मैंने उर्दू के अनुवादक और अध्यापक का काम किया। फिर मॉस्को जाकर हिंदी पढ़ाने लगा। तब से हिंदी अध्यापन से जुड़ा रहा। १९९४ में मैं इज़राइल पहुँचा। यहाँ के दो विश्वविद्यालयों में हिंदी के कोर्स चलाए। मेरे इज़राइल में आगमन से पहले यहां संस्कृत और तमिल भाषाएं पढ़ाई जाती थीं। २००२ में मैंने हिंदी व्याकरण में पी.एच.डी. की। हिंदी पढ़ाने के लिये मैंने हिब्रू भाषा में कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। तीसरे साल के छात्रों को मैं टी.वी. के समाचारों पर आधारित 'सनातन धर्म' नाम का कोर्स तथा 'हिंदी कहानी का उद्‌गम और विकास' नामक कोर्स पढ़ाता हूं।

सन् २००० से मैं तेल-अवीव विश्वविद्यालय के पूर्वी ऐशिया विभाग में काम कर रहा हूं। हमारे विभाग में विद्यार्थी एशियाई देशों की संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करते हैं। चीन, जापान और भारत को पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व दिया गया है। पाठ्यक्रम के अनुसार इन तीनों देशों की कोई एक भाषा सीखना अनिवार्य है। इस प्रकार विद्यार्थी चीनी, जापानी, संस्कृत या हिंदी चुन सकते हैं। हर साल २०-२५ विद्यार्थी हिंदी सीखने आते हैं। सब से अधिक शिक्षार्थी चीनी भाषा चुनते हैं।

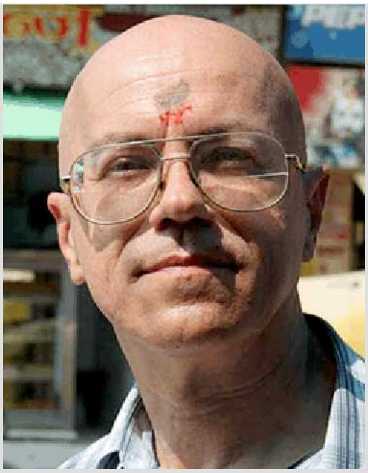

डॉ. गेनादी श्लोम्पेर

१९५४ में भूतपूर्व सोवियत संघ में जन्म। ताश्कंद विश्वविद्यालय से हिंदी-उर्दू-पंजाबी साहित्य में एम.ए.। ताश्कंद रेडियो के उर्दू विभाग में चार वर्षों तक अनुवादक रहे एवं तीन वर्ष स्कूल में उर्दू पढ़ाई। मॉस्को में हिंदी शिक्षक रहे। इज़राइल के दो विश्वविद्यालयों में हिंदी के कोर्स चलाए। यहीं से हिंदी व्याकरण में पी.एच.डी. की। हिंदी पढ़ाने के लिये हिब्रू भाषा में अनेक पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। टी.वी. समाचारों पर आधारित 'सनातन धर्म' तथा 'हिंदी कहानी का उद्‌गम और विकास' नामक कोर्स तैयार किये। हिंदी, उर्दू और पंजाबी से रूसी भाषा में अनेक कहानियों के अनुवाद प्रकाशित करवाये।

सम्प्रति : तेल-अवीव विश्वविद्यालय के पूर्वी ऐशिया विभाग में कार्यरत।

इज़राइल में किताबों की दुकानों में भारतीय लेखकों की रचनाएं मिलती हैं, लेकिन उन सब का अनुवाद अंग्रेज़ी से किया जाता है। हिंदी साहित्य से यहां के लोग परिचित नहीं हैं। एक साल पहले हिंदी कहानी से संबंधित कोर्स चलाकर मैंने अपने छात्रों को हिंदी साहित्य के बारे में प्राथमिक जानकारी प्रदान की है। आशा है कि उनमें से किसी की रुचि साहित्य के क्षेत्र में जाए। तब हिंदी से हिब्रू में अनुवाद का काम शुरू हो जाएगा। इज़राइल के अनेक रचनाकारों ने विश्व भर में नाम कमाया है। शाई अग्नोन नाम के लेखक को नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। लेकिन जहां तक मुझे ज्ञात है, उनकी किसी भी रचना का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ। इस तरह हमारे दोनों देशों का साहित्यिक आदान-प्रदान भविष्य की बात है।

भारत में हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाएं लगातार हाशिये पर धकेली जा रही हैं। ऐसे में देश-विदेश

व्यावहारिक मुद्दे उठाएं और हिंदी की दुर्दशा का रोना न रोएं।

मुझे कई भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों में भाग लेने का मौका मिला। बहुत से वक्ता या तो हिंदी की उपलब्धियों का मनगढ़ंत गुलाबी चित्र पेश करते हैं या उलटे इसकी दुर्दशा की शिकायत करते हैं। लेकिन यह बहुत कम सुनने में आता है कि समस्याओं का समाधान करने के लिये

क्या किया गया है। अब यही उचित समय है जब लोग गिला-शिकवा करने नहीं, बल्कि छोटे ही सही ठोस सवालों का उत्तर ढूंढ़ने के लिये इकट्ठे हों। कभी-कभी हिंदी सम्मेलनों का आयोजन वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों की ओर से किया जाता है, जो ख़ुद हिंदी में दो-चार शब्द जोड़ कर वाक्य बनाने के असमर्थ होते हैं। उन्हें हिंदी की क्या चिंता हो सकती है? ऐसी सभाएं शुष्क औपचारिक भाषणों के उबाने वाले वातावरण में संपन्न होती हैं। वहां उदासीनता का राज होता है। ऐसे सम्मेलनों से क्या फ़ायदा?

दूसरी तरह की सभाएं भी होती हैं जो किसी साहित्यकार को समर्पित होती हैं, हिंदी के विद्वानों की संगोष्ठियां आयोजित होती हैं। उनका हिंदी की स्थिति से संबंध तो होता है, मगर उनका सिलसिला तब भी जारी रहेगा जब, भगवान न करे, हिंदी का शिक्षण और चलन बन्द हो जाए। ऐसी संगोष्ठियां हिंदी में समाज की रुचि जागृत कर सकती हैं। उनकी संख्या जितनी ज़्यादा हो उतना ही बेहतर होगा। मुझे अभी हाल में पता चला कि इस वर्ष सितंबर में दिल्ली में एक वैज्ञानिक सम्मेलन आयोजित होने वाला है जिसमें सभी व्याख्यान हिंदी ही में किये जाएंगे। हो सकता है कि वहां नए-नए वैज्ञानिक आविष्कार प्रस्तुत नहीं किये जाएं, पर यह सच्चाई कि विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान अंग्रेज़ी की बजाय हिंदी में बोलेंगे, वह बड़ा महत्व रखती है। अब तो हिंदी में अभिव्यक्ति की इतनी शक्ति संगृहीत हुई है कि वह न

"हिंदी सम्मेलनों में बहुत से वक्ता या तो हिंदी की उपलब्धियों का मनगढ़ंत गुलाबी चित्र पेश करते हैं या उलटे इसकी दुर्दशा की शिकायत करते हैं। लेकिन यह बहुत कम सुनने में आता है कि समस्याओं का समाधान करने के लिये क्या किया गया है। अब यही उचित समय है जब लोग गिला-शिकवा करने नहीं, बल्कि छोटे ही सही ठोस सवालों का उत्तर ढूंढ़ने के लिये इकट्ठे हों।"

में आयोजित होनेवाले हिंदी सम्मेलनों की उपयोगिता को आप किस नज़र से देखते हैं?

आपके प्रश्न में ही उत्तर नज़र आता है। और वह भी नकारात्मक। मैं हिंदी भाषियों की चिंता अच्छी तरह से समझता हूं। हिंदी की बिगड़ती जा रही स्थिति में सम्मेलनों की बढ़ती हुई संख्या एक विडंबना लगती है। तो मैं पूछ रहा हूं - क्या सम्मेलनों के द्वारा भाषा का हाल बेहतर किया जा सकता है? मेरे विचार में हर सम्मेलन केंद्रीय सरकार और प्रादेशिक सरकारों पर दबाव का प्रभावी माध्यम बन सकता है। इसके लिये ज़रूरी है कि सम्मेलनों के आयोजक हिंदी के विकास और व्यापक प्रयोग के सच्चे पक्षधर हों, अत्यावश्यक

केवल साहित्य और संस्कृति वरन ज्ञान-विज्ञान का भी माध्यम बन सकती है।

हिंदी अख़बारों में हिंदी को हिंग्लिश के तौर पर स्थापित करने की होड़-सी लगी हुई है। बीस-तीस सालों बाद हिंदी का स्वरूप कैसा होगा ?

विदेशी शब्दों के प्रयोग से घबराने की ज़रूरत नहीं है। और उनके विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़नी चाहिये। जनता पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जा सकती है, क्योंकि भाषा भावनाओं और ज्ञान के आदान-प्रदान का माध्यम है, न कि कोई मंदिर और न ही धर्मग्रंथ। हिंदी से फ़ारसी-अरबी के शब्दों को निकालकर संस्कृत के शब्द लाने के काम की ज़रूरत पर संदेह व्यक्त करूंगा। कृत्रिम भाषा लोगों को आकर्षित करने की बजाय उन्हें विमुख कर देगी। मैं रूसी भाषा का उदाहरण दे सकता हूं। सदियों से वह भारी संख्या में विदेशी शब्दों को अपनाती रही है, जो अब उसका अटूट अंश बन गए हैं। यदि आज रूसी भाषा का कोई अख़बार पढ़ा जाए तो पता चलेगा कि अधिकतर सामाजिक और राजनैतिक पर्यायों की जड़ें विदेशी हैं। फिर भी उसने अपनी विशिष्टता नहीं खोई, क्योंकि उसकी व्याकरणिक प्रणाली बनी रही और विदेशी शब्दों का प्रयोग रूसी व्याकरण के नियमों के अनुसार होता है।

वैसे तो भारतीय अख़बार पढ़कर मुझे ऐसा नहीं लगता कि उनकी भाषा ज़रूरत से ज्यादा अंग्रेज़ी से प्रभावित है। जबकि घरों में बोली जानेवाली हिंदी अक्सर बहुत अशुद्ध होती है। मैं प्रायः लोगों से सुनता हूं - 'मैं आपका वेट करूंगा' या 'उसने मेरी बहुत हेल्प की है।' इसका कारण लापरवाही या पिछड़ापन है। इस तरह बात करने वाले लोगों को न अंग्रेज़ी आती है न हिंदी।

हिन्दी के नामी साहित्यकार विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य को नॉस्टेल्जिया का साहित्य कहते हैं। आप क्या कहेंगे ?

मैं उनसे सहमत हूँ। किसी भी भाषा में वास्तविक साहित्य सिर्फ़ तब लिखा जाता है जब लेखकों और पाठकों में गहरी साझेदारी होती है, जब साहित्यकार किसी ठोस समाज में छाए हुए विचारों और प्रवृत्तियों को शब्दबद्ध करते हों। हिंदी में लिखनेवाला रचनाकार, चाहे वह भारत या अमेरिका में रहता हो, अपनी रचना करते समय भारतीय पाठकों को संबोधित करता है। वह अपनी रचनाएं भारतीय लोगों के लिये लिखता है जिनकी विशेष सामाजिक विचारधारा और सांस्कृतिक मूल्य हैं। जबकि वह ख़ुद एक अलग समाज, अलग भाषा और अलग सभ्यता से घिरा हुआ होता है और वह स्वयं भारतीयों से भिन्न समस्याओं में उलझा हुआ होता है। इसलिये जब विदेशों में रहने वाला हिंदी लेखक लिखता है तो वह अपनी यादों के साथ बात करता है।

"विदेशी शब्दों के प्रयोग से घबराने की ज़रूरत नहीं है। और उनके विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़नी चाहिये। जनता पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जा सकती है, क्योंकि भाषा भावनाओं और ज्ञान के आदान-प्रदान का माध्यम है, न कि कोई मंदिर और न ही धर्मग्रंथ।"

लेखक और आम आदमी की शख़्सियत में रचनात्मक तौर पर भिन्नता होती है ?

भगवान शिव की तरह अच्छे लेखक की तीसरी आंख होती है। इस आंख के माध्यम से वह कुछ ऐसी चीज़ें देख पाता है जिनकी तरफ़ आम आदमी का ध्यान नहीं जाता। वह घटनाओं और प्रवृतियों का सार और उनकी महत्ता समझ पाता है। वह मनुष्य का स्वभाव, स्वरूप समझता है। उसके मुख में भाषा एक कला बन जाती है। वह कहानी कहे और पाठक उसका समचिंतक बन जाता है, नायकों से सहानुभूति रखने लगता है और ख़ुद को बेहतर तौर पर समझने लगता है। तीस साल पहले मैंने प्रेमचंद का 'गोदान' बड़े शौक और उत्सुकता के साथ पढ़ा था। कहां मैं था और कहां लगभग एक सौ साल पहले का भारतीय ग्रामीण जीवन। उसमें मुझ जैसे पाठक के लिये कौन-सी रोचक बात हो सकती थी ? इतने ही शौक और उत्साह के साथ मैंने अमरीकी लेखक रॉबर्ट क्राइटन का उपन्यास 'दे केमेरोंस' पढ़ा था, जिसमें १९वीं सदी के

स्कॉटलेंड के मज़दूरों का संघर्ष वर्णित है। लेकिन प्रतिभा संपन्न लेखकों ने राष्ट्रीय और स्थानीय मुद्दों को इस तरीके से चित्रित किया कि वे सारी मानव-जाति के सामान्य मुद्दे बन जाते हैं। वास्तविक वैश्विकरण का आरंभ आज नहीं वरन् तब हुआ जब प्रेमचंद और क्राइटन जैसे बड़े रचनाकारों की कृतियों का अनुवाद किया जाने लगा था।

आधुनिक युवा साहित्य से दूर होता जा रहा है, क्या कहेंगे?

क्या करें? ज़माना बदल गया है। इसके साथ जानकारी प्राप्त करने के स्रोत भी बदल गए हैं। साहित्य ज्ञान, शिक्षा और मनोविनोद का भी माध्यम है। आजकल सिनेमा, टेलीविजन तथा इंटरनेट यह कर्तव्य किताबों से छीनकर धारण कर रहे हैं। जीवन की गति तेज़ होती जा रही है और युवा पीढ़ी को बहुत कठिन काम करना पड़ता है। पेशा सीखने के लिये नौजवानों को बड़ी संख्या में विशेष व्यावसायिक किताबें पढ़नी पड़ती हैं। साहित्य के लिये समय कहां? प्रख्यात लेखक असग़र वजाहत ने हाल ही में प्रकाशित अपने कहानी संग्रह की भूमिका में उचित ही लिखा है कि 'जीवन इतना नंगा हो गया है कि अब लेखक उसकी परतें क्या उखाड़ेगा? रोज़ अख़बारों में जो छपता है वह पूरे समाज को नंगा करने के लिए काफी है।'

फिर भी मैं अक्सर रेल-गाड़ियों और बसों में युवक-युवतियों को साहित्य पढ़ते देखता हूं। कक्षा-सत्रों के बीच अवकाश के समय अपने छात्रों को किसी न किसी नए उपन्यास पर बहस करते सुनता हूं।

हिंदी में प्रायोजित पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं की भरमार है। आप इसे किस नजर से देखते हैं।

साहित्य सम्मानों और पुरस्कारों के लिये नहीं लिखा जाता है। साहित्यकार को वास्तविक सम्मान उसके पाठकों की बढ़ती संख्या से मिलता है और वह तब मिलता है जब साहित्यकार साहस के साथ और खुलकर सच की बात कहे।

> *भगवान शिव की तरह अच्छे लेखक की तीसरी आंख होती है। इस आंख के माध्यम से वह कुछ ऐसी चीज़ें देख पाता है जिनकी तरफ़ आम आदमी का ध्यान नहीं जाता। वह घटनाओं और प्रवृतियों का सार और उनकी महत्ता समझ पाता है। वह मनुष्य का स्वभाव, स्वरूप समझता है।*

सरकार की ओर से दिए जाने वाले पुरस्कारों का उद्देश्य साहित्य को प्रोत्साहन देना होता है। सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों को उनके सुपरिणामों पर सम्मानित करके सारे साहित्य के विकास की अच्छी सेवा की जा सकती है। लेकिन जहां तक मुझे ज्ञात है, अधिकतर पुरस्कार उन रचनाकारों को मिलते हैं जिनकी रचनाओं का स्तर वैसे भी बहुत ऊंचा होता है और किसी भी पुरस्कार से प्रभावित नहीं हो सकता।

दक्षिण अफ्रीका में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलन के अनुभव को साझा करना चाहेंगे।

सम्मेलन में शामिल हुए प्रतिष्ठित एवं गिने-चुने लोगों से ही मैं व्यक्तिगत रूप से परिचित हूं। उनमें भारत के सर्वमान्य कवि और विद्वान डॉ. वेद प्रकाश वटुक तथा लोकप्रिय साहित्यकार हिमांशु जोशी हैं, जिनके साथ विभिन्न मौकों पर मेरठ के चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय में परिचित हुआ था। २००७ में ८वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान मॉरीशस की डॉ. सरिता बूधू से मुलाकात हुई थी। मैं उनकी हिंदी सेवा से बहुत प्रभावित हुआ था। कई संगोष्ठियों में रूस के प्रो. सेर्गेइ सेरेब्रियानी से मिलने का सौभाग्य हुआ था। वे एक अग्रणी विद्वान और साथ ही एक उत्तम इंसान भी हैं। कुल मिलाकर इस सम्मेलन का अनुभव उत्साहजनक था।

दुनियाभर में फैले विदेशी मूल के हिंदी प्रेमी विद्वानों के बारे में बताना चाहेंगे।

विदेशी मूल के जिन हिंदी प्रेमियों को मैं जानता हूं उनकी काफ़ी लंबी सूची बनाई जा सकती है। उनमें चेकोस्लोवाकिया के प्रख्यात विद्वान स्वर्गीय प्रो. ओदोलेन स्मेकल हैं, रूस के प्रमुख स्कॉलर प्रो. अलेक्से बरानीकोव, प्रो. येवगेनी चेलीशेव, प्रो. वसीली बेस्क्रोवनी, प्रो. ज़लमन दीमशीत्स, प्रो. गेओर्गी ज़ोग्राफ़ हैं। उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहुत से ऐसे वैज्ञानिक हैं जो आज भी कार्यरत हैं और हिंदी से संबंधित शोधकार्य में अग्रसर हैं। उदाहरण के लिये ब्रिटेन के प्रो. रोनल्ड मक-ग्रेगोर, अमेरीका के प्रो. हेर्मन वन ओल्फ़ेन, जर्मनी के प्रो. हेल्मुत नेस्पीताल, फ्रांस की प्रो. अन्नी मोंटो, जिनके शब्दकोश और पाठ्य-पुस्तकें विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा स्वीडन के प्रो. हाइन्त्स वेस्लेर, पोलेंड की प्रो. दानूता स्तासिक, इटली की डॉ. अलेसान्द्रा कोंसोलारो, ब्रिटेन की डॉ. फ्रांचेसका ओरसीनी, रूस की डॉ. इंदिरा गाज़ीएवा, रूमानिया की डॉ. सबीना पोपर्लान आदि हैं जो विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान कर रहे हैं। ये सब ऐसे स्कॉलर हैं जिनसे मैं व्यक्तिगत रूप से परिचित हूं। उन विदेशी विद्वानों की संख्या जिन के साथ अभी तक मिलने का अवसर नहीं मिला, वह कई गुना ज्यादा है।■